केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में सामाजिक यथार्थबोध

डॉ. एस. सूर्यावती

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, शासकीय महाविद्यालय

चोडवरम, अनकापल्लि जिला, अंध्रप्रदेश

Email: suryavathis@gmail.com

Phone: 9440417304

शोध सार:

"जनगण–मन के जागृत शिल्पी

तुम धरती के पुत्र"

– नागार्जुन

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं । उनकी कविताओं में व्यापक सामाजिक चेतना का चित्रण मिलता है । वे जीवन और जनता को प्यार करने वाले एक सहृदय, विनयी, विवेकशील व्यक्ति हैं । अपने यथार्थवादी सौंदर्य बोध को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करके काव्य चेतना का मार्ग प्रशस्त किया। केदार जी की लेखनी की निरंतरता ने साहित्य को बहुमूल्य संपत्ति प्रदान की है ।

बीज शब्द: मार्क्सवाद, पूँजीपति, मजदूर, प्रजातंत्र आदि ।

जनवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल का जन्म बाँदा जिले के कुमासन गांव में सन् 1911 को और निधन 22 मई, 2000 को हुआ । आप ने प्रयाग और आग्रा विश्वविद्यालय में बी.ए. और एल.एल.बी. किया। बाद में वकालत की। प्रगतिशील साहित्य के आंदोलन से जुड़कर वे अपनी रचनाधर्मिता को आगे बढ़ाया हैं । उनकी रचनाएँ समय–समय पर 'हंस' और 'नया साहित्य' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थी । केदारनाथ अग्रवाल व्यापक चेतना के कवि हैं, उनकी रचनाओं में मार्क्सवादी विचारधारा परिलक्षित होती है । काल्पनिक आदर्शवाद और आशावाद से रहित इनकी रचनाएँ सच्ची यथार्थवादी कविताएँ कहलाती है । अपनी कविताओं के बारे में कवि स्वयं कहता है– "मेरी कविताओं में मेरा अनुभूत व्यक्तित्व तो हैं ही साथ ही साथ उसमें एक युगबोध और यथार्थबोध भी है । प्रत्येक कविता आत्मान्वेषिणी होते हुए भी यथार्थान्वेषिण भी हैं ।"[1] गाँव और नगर, धनी और निर्धन का अंतर भी इन्होंने बड़ी पटुता से अंकित किया है । वर्तमान जीवन के खोखलेपन को चाहे वह इन्हें कहीं भी दिखाई दिया हो चित्रित करने में यह कभी नहीं चूकते। सामाजिक उद्धार पर आधारित इनकी यथार्थवादी दृष्टि वास्तविकता की भयंकरता को कहीं भी पकड़ लेती है । शहर के लडकों के बारे में कवि ने लिखा हैं –

"शहर के छोकडे

मैले फटे, बदबूदार वस्त्र पहने

बिना तेल कंघी के

रूखे उलझाए बाल

माओं बहनों को

पाप की दृष्टि से ताकते हैं ।"[2]

इनके वस्तु जगत में गाँव का सरल कृषक हैं जो अभाव तथा ऋण में डूबा है तथा मजदूर है जिसके रक्त को जमींदार चूस रहा है । सूदखोर, महाजन, पूँजीपति, कर्मचारी और अधिकारी एकजुट होकर अपनी सुविधा के लिए परिस्थितियों को यथास्थित बनाए रखना चाहते हैं । वे स्वार्थी बनकर मानवीय संवेदना को भुला दिया है । उनकी कविताएँ कृषक जीवन के परिवेश की कविताएँ हैं, जिनमें कर्म और पसीने का सौंदर्य है ।

उत्तर छायावादी काल में प्रगतिवादी आंदोलन को जिन थोड़े से कवियों ने बल दिया है, उनमें केदारनाथ अग्रवाल प्रमुख हैं । वे उन अवसरवादी कावियों में से नहीं है जो सरकारी नौकरी मिलते ही अपना मत बदल देते हैं । अपनी रचनाओं में उन्होंने पूँजीवादी सभ्यता के दोष गिनते हुए पूँजीपतियों की क्रूरता और हृदय हीनता की खुलकर निंदा की है । ऐसे लोगों को उन्होंने जनता का मांस नोचकर खाने वाले गिद्ध बतलाया है । किसान और मजदूर की दयनीय स्थिति के लिए उन्होंने सूदखोर मिल मालिक, राजनीतिक नेता और सरकार सभी को उत्तरदायी ठहराया है । देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए उन्होंने बताया है कि लोग आजीविका विहीन है, भूखे हैं, त्रस्त है ।

साम्यवादी विचारधारा के प्रसार लिए एक ओर ये किसानों और मज़दूरों को उत्तेजित कर उनमें विद्रोह की भावना का संचार करते हैं वहीं दूसरी ओर मनुष्य के उपचेतन पर प्रभाव डाल कर उसके भीतर से कुंठा, अहं और स्वार्थ की भावनाओं को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । जिनसे व्यक्तिवाद के पनपने की आशंका होती है । ये प्रवृत्तियाँ मोर्चे पर कविता में उभरकर आई है–

"मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ मोर्चे पर ।
मैं अचेतन और उपचेतन सभी पर
वार करता जा रहा हूँ ।
सूदखोर को,
मिलों के मालिको को,
अर्थ के पैशचिकों को,
भूमि को हड़पते हुए धरणीधरों को
मैं प्रणय के साम्यवादी आक्रमण
से मारता हूँ ।"[3]

शोषकों के प्रति अपना आक्रोश स्थान–स्थान पर तरह–तरह से व्यक्त किया है । मजदूरों के श्रम को लूटकर उन्हें भूख से तडपने के लिये छोढ दिया हैं । निम्न कविता में कवि ने थैलीशाहों की शोषण का चित्रण किया हैं – "थैलीशाहों की यह बिल्ली/ बडी नीच हैं/ मजदूरों का ख़ाना–दाना/ सब चोरी से खा जाती हैं/ बेचारे भूखे सोते हैं ।"[4]

समसामयिक समाज में जो वर्ग वैषम्य हैं, निराशा है, दुख और अभाव है, उन स्थितियों को पूरी ईमानदारी से अपनी कविता में प्रस्तुत किया है । मार्क्सवादी चिंतक होने के नाते कवि परंपरागत धार्मिक मान्यताओं, रुढ़ियों, सड़ी गली परंपराओं, रूढ़िग्रस्त धर्म, मूर्ति पूजा का विरोध करता है । वे मानते हैं कि प्रगतिशील समाज के ये बाधक तत्व है । और ये समाज को पतनोन्मुख बनाता है । जनवादी कवि केदारनाथ ने रूढिग्रस्त धर्म तथा मूर्तिपूजा का विरोध इस प्रकार करते हैं –

"छोटी सी देवमूर्ति/ आले में रखी थी/ बेचारी औचक ही/ चूहे के धक्के से/ दांसा के पत्थर पर/ नीचे गिर टूट गई"[5]

कवि रोज़ी रोटी की समस्या का उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि–

"रोटी तुमको राम न देगा, वेद तुम्हारा काम न देगा

जो रोटी के लिए लड़ेगा, वह रोटी आप वरेगा ।"[6]

कवि ने राजनीतिक नेताओं का उपहास किया है । नेताओं के खंडित व्यक्तित्व को रेखांकित करता है –

"न तुम भविष्य को उज्ज्वल कर सकते हो
न आज को सुंदर कर सकते हो ।"[7]

चतुर्थिक अन्याय देखकर कवि का मन दुःखित होता है । सर्वत्र ज़ोर–जुल्म और भ्रष्टाचार व्याप्त है । एक वकील होने के नाते, वे स्वयं न्यायालय में हो रहें अन्याय और नौकरशाही को देखकर बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं । वे नौकरशाही और अफसरशाही का विरोध करते हैं ।

"जनता का जमघट मैं बाँधू
इनका तोड़ूँ नौकरशाही।
अफसरशाही का सिर फोड़ूँ ।"[8]

सामान्य जनता की व्यापक संवेदना को अपनी रचनाओं में मुखरित किया है । इनके काव्य में कानपुर के मज़दूरों से लेकर बांदा जिले के किसानों के जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है । तत्कालीन समाज में उपस्थित बेरोजगारी की समस्या का चित्रण करता है ।

"रद्दी की टोकरी का जीवन है/ संज्ञाहीन, अर्थहीन/ बेकार चिर फटे टुकड़ों सा पड़ा है/ देरी है/ एक दिन, एक बार, आग के चूने की/ राख हो जाना है ।"[9]

केदारनाथ ने गरीबों की ही नही निम्न मध्यवर्गीय परिवार की समस्याओं का भी चित्रण किया हैं । उनकी मायूसी और वस्त्राभाव की स्थिति 'हे मेरी तुम' कविता में प्रस्तुत किया हैं ।

इतना ही नहीं वो निम्न जातियों को उद्बोधन किया। 'मछुआरे' और 'दीन कुनवा' जैसे कविताओं ने उन लोगों की बदहाली का चित्रण किया है । मछुआरे कविता में कवि कहते हैं –

"अर्राती चौगुनी धार को
सहज चीरकर बढ़ने वाले
गंगा तट के ये मछुआरे
नैया पार लगाने वाले ।"[10]

नारी स्वतंत्रता की कामना करते हुए केदार ने 'रनिया' नामक कविता में लिखा है–

"अब रनियाँ के दिन आये है
जग उसके माफिक बदलेगा।"[11]

राजनीतिक अराजकता पर भी केदारनाथ ने गहरा व्यंग्य किया है ।

स्वाधीन भारत में पतनोन्मुख नेताओं के चरित्र पर केदारनाथ आक्रोश और चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

"सत्ताइस साल में तुम
न तुम रह गए तुम ।
ना हम रह गए हम
तुम हो हो गए खूंख्वार
हम हो गए बीमार, अभावग्रस्त, लाचार"[13]

कवि जनवादी सरकार बनाने के पक्ष में है। वह सरकार की कड़ी आलोचना इसलिए करता है कि वह भारत में ब्रिटिश अर्थ नीती लागू करना चाहता है। सरकार अधिक टैक्सों को जनता पर लादकर जीवन के अधिकार को छीन लेती हैं। अंग्रेज भारत को छोड़कर चले गए किंतु सरकार अंग्रेज शासन रीति को खुद छोड़ नहीं पा रहीं है कवि के शब्दों में–

"अर्थनीति में राजनीति में गहरा गोता खाया।
जनवादी भारत का उसने सब कुछ वहाँ गँवाया।"[14]

कवि ने 1978 में जनतंत्र की दुर्गति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। अगली पीढ़ी के द्वारा देश की विकास की कामना करते हुए कवि कहते हैं कि सिर्फ भाषणों से काम चलाने वाले शासकों की खिल्ली उड़ाते हुए कवि कहते हैं –

"देश में लगी आग को
लफ्फाजी नेता
शब्दों से बुझाते हैं।
वाग्धारा से उर्वर
और देश को
आत्मनिर्भर बनाते हैं
लोकतंत्र का शासन
भाषण तंत्र से
चलते हैं।"[15]

आततायी सत्ता के खोखलेपन तथा उसके अनाचार को बेनकाब करता हुआ कहता हैं–

"आग लगे इस समाज में।
ढोलक मढती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की।
खून बहाए रामराज में। आग लगे.."[16]

देश में फैली अराजकता का पर्दाफाश करते हुए कवि कहते हैं कि इस देश में आराम की जिंदगी जी नहीं सकते। यह पता नहीं कि किसका चाकू किसके पेट में घुसता हैं अर्थात मौत कब आ जाती हैं। यह अराजकता बढती ही जा रही हैं। किसी को सुकून की जिंदगी जीने का अधिकार इस स्वतंत्र भारत में नहीं रह गया हैं।

केदारनाथ अग्रवाल ने यथार्थवाद सौंदर्यबोध को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करके राजनीतिक काव्य चेतना का मार्ग प्रशस्त किया है। उनकी कविता की सबसे बड़ी शक्ति लोकपरता है। उनकी लोकोन्मुखता जीवन के सहज आवेग से संपृक्त है। उन्होंने लोक जीवन की अनुभूति, सौंदर्य बोध और प्रकृति से जुड़े सवालों का सहज और उदात्त मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। जन संस्कृति के तहत उनकी कविताएँ ग्रामीण समाज के सुख–दुख, राग–रंग, हास–विलास, आशा–आकांक्षा में शामिल हैं। अमृतराय के शब्दों में "केदार गहरी जीवन के आस्था का कवि हैं। मैं समझता हूँ यही उसके कवि व्यक्तित्व का बीज गुण हैं। उसके काव्य उन्मेष का बीजमंत्र और उसकी काव्य उपलब्धि का सार मर्म"[17]

निष्कर्ष:

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ अधिकतर जीवन के सामाजिक और मानवीय मुद्दों पर आधारित हैं, जिससे व्यक्तिगत अनुभव और समस्याओं का सामाजिक संदेश प्रस्तुत होता हैं। केदारनाथ किसान और मजदूरों के समर्थक, शोषकों और पूँजीपतियों

के विरोधी, नारी स्वतंत्रता के आकांक्षक, गरीबों के पक्षधर हैं। अशोक त्रिपाठी के शब्दों में " ये कविताएँ देश के मेहनत मजूरी करने वाले लोगों की आत्मा की पुकार हैं, उनकी झुंझलाहट हैं, उनकी तिलमिलाहट हैं, उनकी खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की संकल्प शक्ति हैं।"[18]

संदर्भ :

1. केदरनाथ अग्रवल – फूल नहीं रंग बोलते हैं भूमिका से पृ. 4
2. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 45
3. डॉ. लल्लन राय – हिंदी की प्रगतिशील कविता पृ. 155, 156
4. केदारनाथ अग्रवल – कहे केदार खरी–खरी पृ. 6
5. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 33
6. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 38
7. केदारनाथ अग्रवल – कहे केदार खरी–खरी पृ. 188
8. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 128
9. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.29
10. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.54
11. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.48
12. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 90
13. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 186
14. केदारनाथ अग्रवाल – मारे प्यार की थापें पृ. 79
15. केदारनाथ अग्रवाल – मारे प्यार की थापें पृ. 26
16. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 81
17. अमृतराय – आधुनिक हिंदी कविता सं. जगदीश चतुर्वेदी पृ. 79
18. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी की कैफियत से पृ.10